पेरिस जलवायु सम्मेलनः आधा डिग्री का झगड़ा

डेरिल डीमोन्ट

पेरिस में हाल में आयोजित राष्ट्र संघ जलवायु शिखर सम्मेलन फुस्स हो गया क्योंकि सहभागी देशों ने स्वैच्छिक वचन तो दिए मगर इस बात पर कोई आम सहमति नहीं बन पाई कि कितनी उच्चतम तापमान वृद्धि पृथ्वी पर जीवन के लिए सुरक्षित रहेगी।

वार्ताओं के लंबे-लंबे चक्रों में से ऐसा कुछ भी नहीं निकला जो महत्वपूर्ण कहा जा सके। इस तरह से आसन्न जलवायु परिवर्तन के वैज्ञानिक प्रमाण को नकार दिया गया। इन वार्ताओं में विगत शिखर सम्मेलन, 2009 के असफल कोपनहैगन सम्मेलन, सारी इबारतें और उप-इबारतें, अनसुलझे मुद्दों के कोष्ठक और शब्दों को लेकर अंतहीन बहसें शामिल हैं।

विभिन्न देशों के बीच विवाद का नया मुद्दा यह है कि वैश्विक तापमान का उच्चतम बिंदु कहां निर्धारित किया जाए जिसके ऊपर जाने पर परिणाम घातक होंगे। पेरिस से पहले तक सारे देश औद्योगिक युग से पहले के तापमान के ऊपर 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि का ज़िक्र करते आए थे। अलबत्ता, पक्षों के सम्मेलन 21 (कॉन्फरेंस ऑफ पार्टीज़ 21, यानी संक्षेप में कॉप 21) में छोटे द्वीप देशों और अन्य जोखिमग्रस्त देशों ने काफी मुखरता से इसे घटाकर 1.5 डिग्री सेल्सियस करने की वकालत की।

कनाडा, जर्मनी और फ्रांस जैसे विकसित देशों ने बहस में शिरकत करते हुए अपनी तरफ से एक नया जुम्ला जोड़ाः '2 डिग्री सेल्सियस से काफी कम'। इस जुम्ले की कोई वैज्ञानिक परिभाषा नहीं है। भारत और चीन ने तीनों विकल्पों (2 डिग्री की वृद्धि, 1.5 डिग्री की वृद्धि और 2 डिग्री से काफी कम वृद्धि) पर चर्चा की तैयारी जताई। लिहाज़ा उन्हें 'खेल बिगाड़ने वाला' माना गया। ऐसा लगता है कि संभवतः मध्य मार्ग को अपनाया गया यानी तापमान में वृद्धि '2 डिग्री से काफी कम' रखी जाए और लक्ष्य 1.5 डिग्री का रहे। यह वास्तव में सबसे छोटे और सबसे ज़्यादा जोखिमग्रस्त देशों को ध्यान में रखकर दी गई रियायत है।

राष्ट्र संघ के एक विशेषज्ञ दल के मुताबिक यदि उच्चतम सीमा को आधा डिग्री कम किया जाए तो अधिकांश ज़मीनी तथा समुद्री प्रजातियां जलवायु परिवर्तन की रफ्तार के साथ तालमेल बना पाएंगी। लगभग आधी कोरल रीफ्स (मूंगा शैलभित्तियां) बची रहेंगी। समुद्र सतह में वृद्धि 1 मीटर से कम रहेगी और अनुकूलन के प्रयासों, खासकर खेती में अनुकूलन के प्रयासों के लिए ज़्यादा गुंजाइश रहेगी।

दारोमदार भारत पर

यह ज़िम्मेदारी भारत के विशेषज्ञों के कंधों पर आ गई कि वे दुनिया को याद दिलाएं कि तापमान वृद्धि की उच्चतम सीमा को घटाकर 1.5 डिग्री करने का मतलब क्या होगा। यह अधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्य भारत व अन्य विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को बाधित करेगा क्योंकि उन्हें अपने उत्सर्जन में और कटौती करनी होगी।

मुंबई के टाटा समाज विज्ञान संस्थान के टी. जयरामन के मुताबिक यह नया लक्ष्य (वैश्विक तापमान में वृद्धि को अधिकतम 1.5 डिग्री सेल्सियस पर थामना) सम्पन्न राष्ट्रों को मजबूर करेगा कि वे गरीब देशों के लिए अपने बजट तथा टेक्नॉलॉजी के प्रावधान में काफी वृद्धि करें ताकि गरीब देश जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के अधिक उपाय कर सकें।

जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) की नवीनतम रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि पूरी दुनिया में 2011 से 2100 तक कुल कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन को 550 गिगाटन रखा जाए तो तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस पर थामने की 50 प्रतिशत संभावना होगी। राष्ट्र

संघ जलवायु परिवर्तन ढांचागत संधि में गणना की गई है कि वर्तमान में सारे देशों के 'राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान के इरादों' को देखें तो 2011 से 2025 के बीच कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन 542 गिगाटन होगा और 2011-2030 के दरम्यान 748 गिगाटन हो जाएगा।

जिन लगभग 186 देशों ने पेरिस में अपनी योजनाएं प्रस्तुत कीं उनके वर्तमान वचनों के आधार पर 2.7 डिग्री से अधिक की वृद्धि तो अवश्यंभावी है। यूएस व युरोपीय संघ 2011 से 2030 के बीच अनुमानित 128 गिगाटन कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित करने जा रहे हैं। यह वर्तमान में निर्धारित बजट का लगभग एक-चौथाई है। सारे औद्योगिक देश मिलकर 2011-2030 के बीच 187 गिगाटन उत्सर्जन करेंगे जो कुल बजट का 34 प्रतिशत है।

संभावना है कि 2030 तक भारत का उत्सर्जन 58 गिगाटन होगा जो कुल उपलब्ध बजट (550 गिगाटन) का 10.5 प्रतिशत है। यदि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर ज़्यादा भी रही (जिस आंकड़े का उल्लेख भारत सरकार ने पेरिस में अपने प्रस्तुतीकरण में किया है) तो भी भारत का उत्सर्जन 87 गिगाटन कार्बन डाईऑक्साइड रहेगा जो बजट का 16 प्रतिशत है।

नई दिल्ली स्थित विज्ञान व पर्यावरण केंद्र के उप महानिदेशक चंद्र भूषण बताते हैं कि भारत का कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन सम्पन्न देशों से आधा रहेगा जबकि भारत की आबादी उन सारे देशों की कुल आबादी के बराबर है। वर्तमान हालात में होगा यह कि औद्योगिक देश भविष्य में शेष उपलब्ध कार्बन गुंजाइश को हड़पते रहेंगे।

मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय और आईआईटी मुंबई के आनंद पटवर्धन का तर्क है कि सम्पन्न देशों को पांच से दस साल की अवधि में शून्य उत्सर्जन पर पहुंचना होगा। वे कहते हैं, 'ऐसे वचनबद्धता के अभाव में 1.5 डिग्री (की अधिकतम तापमान वृद्धि) का लक्ष्य खोखला रहेगा, जिसका कोई वास्तविक महत्व नहीं होगा।'

तापमान वृद्धि का कमतर लक्ष्य सिर्फ बात करने के लिए एक लक्ष्य है, संकल्प के लिए नहीं। यूएस राष्ट्रपति बराक ओबामा छोटे द्वीप देशों के राष्ट्र प्रमुखों से मिले और बताया कि उनकी चिंताएं कितनी 'महत्वपूर्ण' हैं। यूएस के जलवायु वार्ताकार टॉड स्टर्न ने पहले तो कहा कि ये चिंताएं जायज़ हैं मगर बाद में स्पष्ट किया कि यूएस लक्ष्य को बदलने के हक में नहीं है बल्कि नए लक्ष्य को मात्र एक वांछनीय उद्देश्य के रूप में रखना चाहता है।

विकास के प्रति समर्पित एक एनजीओ ऑक्सफैम इंटरनेशनल का कहना है कि यदि लक्ष्य महत्वाकांक्षी न हों तो इस शिखर वार्ता में से कोई कार्रवाई नहीं निकलेगी। यही कारण है कि ग्रीनपीस और फ्रेंड्स ऑफ दी अर्थ इंटरनेशनल जैसे कई गैर सरकारी संगठनों ने कम तापमान वृद्धि के महत्वाकांक्षी लक्ष्य का समर्थन किया है।

हानि और क्षतिपूर्ति

पेरिस शिखर वार्ता में एक नया मुद्दा सामने आया - जलवायु परिवर्तन की वजह से होने वाली हानि व उसकी क्षतिपूर्ति। गरीब देशों का तर्क है कि पिछले 160 वर्षों में औद्योगिक उत्सर्जन की वजह से वातावरण में जो कार्बन डाईऑक्साइड जमा हुई है उसके परिणामों की कीमत वे नहीं चुकाएंगे। जैसे चैन्नई की हाल की बाढ़ और 2005 की मुंबई की बाढ़ ऐसी घटनाओं के उदाहरण हैं जो काफी हद तक जलवायु परिवर्तन की वजह से हुई हैं।

जलवायु परिवर्तन से सम्बंधित हरेक सम्मेलन में बीमा कंपनियां ज़ोर-शोर से इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करती

रही हैं कि हानि और क्षतिपूर्ति के दावों में तेज़ बढ़ोतरी के कारण उनकी दिक्कतें बढ़ती जा रही हैं। आश्यचर्यजनक रूप से पेरिस में ऐसा नहीं हुआ।

हालांकि पेरिस समझौते में हानि व क्षतिपूर्ति के सिद्धांत को स्वीकार करने को लेकर लफ्फाज़ी तो की गई मगर विकसित देशों ने सुनिश्चित किया कि इसकी कीमत उन्हें न चुकानी पड़े। यह कीमत साल-दर-साल अरबों डॉलर हो सकती है। मालदीव जैसे छोटे द्वीप देशों से पलायन की क्षतिपूर्ति करने की लागत ही भयानक होगी। आशंका यह है कि मालदीव जैसे देश कुछ वर्षों में जलमग्न हो जाएंगे।

1.5 डिग्री का लक्ष्य स्वीकार करना इन छोटे, जोखिमग्रस्त और सबसे कम विकसित देशों के भय को शांत करने का एक औज़ार बनकर उभरा। यूएस, युरोपीय संघ और अन्य विकसित देश इस संदर्भ में कोई उल्लेखनीय निवेश किए बगैर यह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने इन जोखिमग्रस्त देशों की ज़रूरतों को स्वीकार किया है। ***(स्रोत फीचर्स)***

यह लेख पहले अंग्रेज़ी में *नेचर इंडिया* में प्रकाशित हुआ था।